प्रारंभिक परमार शासक

डॉ. नवीन गिडियन
प्रोफेसर एवं अध्यक्ष - इतिहास विभाग
शासकीय स्वशासी कन्या स्नातकोत्तर उत्कृष्टता महाविद्यालय, सागर (म.प्र.)

सर्वविदित है कि परमार मालवा का प्रमुख राजवंश था और मालवा के परमार शासकों ने प्राचीन भारत के इतिहास में एक महत्वपूर्ण भाग का अभिनय किया और किसी समय उच्च चक्रवर्ती पद प्राप्त किया। कभी वे मालवपति के रूप में और कभी अवन्ती नरेश के नाम से चिन्हित थे। अपने उत्कर्ष के समय में उनके राज्य की सीमा उत्तर में वर्तमान कोटा और बूँदी राज्यों[1] तक जिनके पार दुबकुड के कच्छपघातों और मेवाड के गुहिलोतों का प्रदेश था।[2] पूर्व में भिलसा, होशंगाबाद और सागर जनपद के भाग[3] तक जो त्रिपुरी के कलचुरियों और जेजाक भुक्ति के चंदेलों के राज्यों की सीमा पर था, दक्षिण में गोदावरी नदी[4] और खन्देश प्रदेश[5] तक, जिसके उस पार कल्याणी के चालुक्यों के राज्य थे, पश्चिम में माही नदी तक[6], जो गुजरात के चौलुक्य शासकों के राज्य से इसे अलग करता था, दसवीं शती ईसवी के उत्तरार्द्ध में पद्मगुप्त के जीवन काल (972-1000 ई.) में कुछ काल तक उज्जैन इसके प्रशासन की राजधानी हुई थी।[7]

वर्तमान उज्जैन नगर क्षिप्रा नदी के दाहिने तट पर बसा हुआ है जो एक प्रसिद्ध प्राचीन नगर है। परमारों के उत्कर्ष के बहुत पूर्व धारा मालवा का प्रमुख नगर था। गुप्तों के पतन के बाद कन्नौज के मौखरी राजा ईश्वर वर्मन् पर धारा के राजा के आक्रमण का उल्लेख प्राप्त होता है।[8]

पद्मगुप्त ने धारा को राजा सिंधुराज की 'अपरा-पुरी' तथा उसकी 'कुल-राजधानी' कहा है।[9] इससे प्रमाणित होता है कि इस वंश ने सर्वप्रथम धारा को अपनी राजधानी बनाया। ग्यारहवीं शती ईसवी के आरंभिक भाग में इस नगर का पुनर्निर्माण हुआ[10] और राजवासस्थान वहाँ स्थानांतरित किया गया। 'पारिजात-मंजरी' में धारा नगरी को राजप्रसादों का नगर कहा है जिसमें इसके चारों ओर की पहाड़ियों पर सुन्दर प्रमोद उपवन थे।[11] यह अपने कुशल गायकों और प्रकाण्ड विद्वानों के लिए विख्यात था। वहाँ की सभ्यता और संस्कृति उच्च कोटि की थी।[12] यह वर्तमान धारा नगर है जो मध्य भारत में इसी नाम के राज्य का मुख्य कार्यालय है और पौन मील लम्बा और आधा मील चौड़ा है। श्री कनिंघम ने लिखा है कि 'इस स्थान का पूरा घेरा 3½ मील से कम नहीं हो सकता, क्योंकि इसका किला नगर के बाहर है।[13]

उपेन्द्र

परमार राजवंश का प्रथम राजा उपेन्द्र था जो राष्ट्रकूट गोविन्द तृतीय का एक माण्डलिक था। 'उदयपुर प्रशस्ति'[14] और 'नवसाहसांक-चरित्र'[15] दोनों में लिखा है कि उपेन्द्र एक बहुत प्रतापी राजा था और वह विशेष रूप से 'यज्ञ-समूह' करने के लिए विख्यात था। पहले अभिलेख में यह भी लिखा है कि राजा ने अपनी प्रजा के करों के बोझ को कम किया।[16] इसमें यह भी वर्णन है कि उसका यश दूर-दूर तक फैला और यह सीता के गीत का विषय था और इसने उसको आश्वस्त किया, जिस प्रकार हनुमान ने पौराणिक वीर राम की पत्नी

सीता के श्रांत मन को लंका नगर में उसके बंधनकाल में आश्वस्त किया था।[17] 'प्रबंध चिंतामणि'[18] का कथन है कि भोज के दरबार में सीता नाम्नी एक कवयित्री थी। हो सकता है 'नवसाहसांक चरित्र' का उपर्युक्त श्लोक किसी एक प्रशस्ति का उल्लेख करता हो जो उस कवयित्री ने उपेन्द्र की प्रतिष्ठा में रचा था।[19]

वाक्पति-मुंज के दो भूमिदान[20] एक नाम कृष्णराज का आया है जिसके चरणों पर सीअक-हर्ष के पिता वैरिसिंह द्वितीय ध्यान करते थे। श्री हाल ने लिखा है कि उपेन्द्र और कृष्णराज नाम पर्यायवाची हैं[21] 'उदयपुर प्रशस्ति' में कृष्णराज नाम के किसी राजा का नाम नहीं आया है अतः उसका तादात्म्य उपेन्द्र से है। श्री हाल के मत का समर्थन श्री कनिंघम, श्री बुहलर और श्री बर्गेस ने किया है।[22]

उपेन्द्र ने अपना शासन 808 और 812 ई. के बीच किसी समय आरंभ किया। सुविधा के लिए हम अस्थायी रूप में इसको 809-810 ई. मान सकते हैं। इस तिथि और वाक्पति मुंज (971-972 ई.) के राज्यारोहण के वर्ष के बीच में 162 वर्ष की अवधि बीत चुकी थी। इससे उपेन्द्र से लेकर सीअक द्वितीय तक की प्रत्येक पीढ़ी का लगभग 27 वर्ष की अवधि का शासनकाल बैठता है। इसका अनुगमन करने से उपेन्द्र का शासन काल 837 ई. में समाप्त हुआ।

मालवा के शासकों की 'उदयपुर प्रशस्ति' हमें सूचित करती है कि उपेन्द्र के बाद वैरिसिंह प्रथम, सीअक प्रथम और वाक्पति प्रथम गद्दी पर बैठे।[23] यद्यपि पद्मगुप्त ने वैरिसिंह प्रथम और सीअक प्रथम के नाम को स्पष्ट रूप से नहीं लिखा है तथापि उनके उत्तराधिकारी रूपी तथ्य की यह लिख कर पुष्टि की है कि उपेन्द्र और वाक्पति प्रथम के बीच अनेक शासक हुए।[24]

वैरिसिंह प्रथम

अपने पिता के शासन की समाप्ति के बाद वैरिसिंह प्रथम लगभग 836-37 ई. में सिंहासन पर बैठा। उसके कनिष्ठ भ्राता डम्बर सिंह को संभाव्यतः उससे बागड़ प्रांत मिला और उसने मालवा के वंश के एक माण्डलिक के रूप में वहाँ शासन किया।[25] इस नए राजा के सामारिक पराक्रमों के संबंध में हमें विशेष रूप से कुछ ज्ञात नहीं है। कवि ने वर्णन किया है कि किस प्रकार उसने पृथ्वी के विभिन्न भागों में विजय-स्तम्भ का निर्माण किया और अनेकानेक राजाओं से कर संग्रह किया जो उसके दैवी गुणों के कारण उसके प्रति अत्यंत अनुकूल व्यवहार करते थे।[26] इस श्लोक के बल पर कुछ विद्वानों का झुकाव धारा में लौह-स्तंभ बनाने का श्रेय उसे देने की ओर है।[27] उसके पश्चात सीअक प्रथम लगभग 863 ई. में गद्दी पर बैठा।

सीअक प्रथम

इस राजा के शासन के संबंध में भी हमारा ज्ञान अत्यल्प है। एक महान् विजेता के रूप में उसका वर्णन किया गया है और कहा जाता है कि उसने अपने बहुसंख्यक शत्रुओं का वध किया।[28] उसका उत्तराधिकारी वाक्पति प्रथम था जो संभावतः 890-91 ई. के लगभग सिंहासनारूढ़ हुआ।

वाक्पति प्रथम

उदयपुर-प्रशस्ति[29] के श्लोक 10 में इस राजा के संबंध में लिखा है कि वह अवन्ति की कुमारियों के नेत्रोत्पलों के लिए सूर्य था, अप्रत्यक्ष रूप से इससे प्रमाणित होता है कि इस प्रदेश पर उसका पूर्ण आधिपत्य था। उसके सामरिक शौर्य की तुलना शतमख (इंद्र)[30] से की गई है और कहा गया है कि उसकी सेनाओं ने गंगा और समुद्र के जलों को पिआ। निस्संदेह यह कविकृत प्रशंसा है।

वैरिसिंह द्वितीय

वाक्पति का शासन 917-18 ई. के लगभग समाप्त होता प्रतीत होता है, जब उसके पुत्र वैरिसिंह द्वितीय ने प्रशासन भार ग्रहण किया जो वज्रट के नाम से भी प्रसिद्ध है।[31]

उपेन्द्र से वैरिसिंह द्वितीय तक के इन पाँचों परमार शासकों के सामरिक पराक्रमों के संबंध में हमारी सूचना अत्यल्प है। इसका कारण यह है कि वे अब भी दक्खिन के राष्ट्रकूटों के मांडलिकों के रूप में अपना अधिकार ग्रहण किये हुए थे, पर अपने शक्तिशाली पड़ोसी राजाओं के विरूद्ध आक्रमणशील युद्ध करने की पर्याप्त सम्पन्नता उनमें न थी। वास्तव में परमारों का उत्कर्ष उत्तर में गुर्जर-प्रतिहार शक्ति के और दक्षिण में राष्ट्रकूट आधिपत्य के ह्रास और पतन पर पूर्णतया निर्भर करता था। आगे के खण्डों में मैं यह दिखाने का प्रयास करूँगा कि कैसे अनेक विपत्तियों को झेलकर, वे अंततः अधीनता की जुआ को फेंकने में सफल हुए। यह संभव्यतः वैरिसिंह द्वितीय के शासन के आदि भाग में हुआ कि कन्नौज के प्रतिहारों के हाथ परमार शासन को श्रीविहीन होना पड़ा।

नागभट्ट द्वितीय का पुत्र प्रतिहार रामभद्र निर्बल और सामरिक शौर्य-विहीन था।[32] उसके बाद भोज आया जो युद्ध विद्या में अपनी कुशलता के लिए विख्यात था। इस सम्राट ने अनेक विजयों द्वारा अपना नाम किया और अपने राज्य की सीमाओं का दूर तक विस्तार किया। प्रतीत होता है कि दक्षिण-पश्चिम में सौराष्ट्र के चालुक्यों ने उसके स्वायत्व को स्वीकार किया,[33] किन्तु सैन्य कार्यों को आगे बढ़ाने के उसके प्रयास को असाधारण असफलता सहन करनी पड़ी। वह राष्ट्रकूट राज्य में धस न सका जिसका विस्तार उत्तर में मालवा और लाट तक था। लाट के राष्ट्रकूट राजा ध्रुव द्वितीय द्वारा 867 ई. के कुछ समय पूर्व वह परास्त किया गया।[34] अनेक उत्कीर्ण अभिलेखों से प्रकट होता है कि मालवा इस समय भी राष्ट्रकूट राज्य का एक भाग था। अमोघवर्ष के शासन काल के तिथ्यांकित 866 ई. निलगुण्ड शिलालेख[35] में लिखा है कि मालवा का पति उस राजा की पूजा करता था। कन्नौज राज्य पर चढ़ाई करने अवसर पर राष्ट्रकूट इन्द्र तृतीय (914 ई.) उज्जैन में ठहरा और महाकाल मंदिर में अपनी भक्ति प्रदर्शित की।[36] जब तक इन्द्र तृतीय दक्खिन के सिंहासन पर था, कन्नौज के प्रतिहार दक्षिण में अधिक लाभ न उठा सके,[37] किन्तु 918 ई. के कुछ ही समय पूर्व उसकी मृत्यु हो जाने से राष्ट्रकूट राज्य में अव्यवस्था फैली। गोविन्द चतुर्थ ने अपने ही ज्येष्ठ भ्राता इन्द्र तृतीय के उत्तराधिकारी की चाल चलकर हत्या कर दी और उसके सिंहासन को छीन लिया।[38] वह आततायी था और उसके शासन काल में अवैधता और अव्यवस्था ने महान् राष्ट्रकूट साम्राज्य को संक्षुब्ध किया।[39] प्रतिहार प्रशासन को कुछ वर्ष पूर्व इन्द्र तृतीय के हाथ एक प्रचण्ड आघात सहन करना पड़ा था।[40] उसने दक्खिन में इस परिवर्तित स्थिति की ओर ध्यान दिया। प्रतिहार भोज प्रथम के बाद महेन्द्रपाल प्रथम और भोज द्वितीय सिंहासन पर बैठे। भोज द्वितीय के बाद महीपाल ने जो 941 और 946 ई. के बीच में शासन करता था भोज द्वितीय का राजपद प्राप्त किया।[41] वह एक महान् योद्धा था। राष्ट्रकूट साम्राज्य में किंचित् समय पूर्व क्रांति का जो आकस्मिक प्रादुर्भाव हुआ उससे उसको अपने सामरिक गुणों के प्रदर्शन करने का निर्बाध कार्य क्षेत्र मिला। उसकी सेनाएँ विजय-यात्रा करती हुई देश-देश घूमीं। महीपाल के राजकवि राजशेखर ने अपने स्वामी की सामरिक सिद्धियों का निम्नलिखित कवि-सुलभ स्फूर्तियुक्त सजीव वर्णन किया है।" उस वंश में यशस्वी महीपालदेव उत्पन्न हुआ जिसने मुरलों के शिरों की शिखाओं के केश समूहों को झुका दिया है, जो मेकलों के पूयोत्पादन करने का कारण बना है, जिसने

युद्ध में अपने सामने कलिगूड़ों को खदेड़ा है, जिसने केरलों के चन्द्रमा (राजा) के मनोरंजन को भंग किया है, जिसने कुलूतों को विजय किया है, जो कुतलों के लिए कुठार रूप है, और जिसने रमठों की सम्पदाओं को बलात् छीन लिया है।

अधिकांश प्रदेश, जिनका ऊपर वर्णन किया गया है, प्रतिहार साम्राज्य की सीमा पर थे और डॉ. आर. सी. मजूमदार ने योग्यतापूर्वक दिखलाया है कि उपर्युक्त वर्णन को मात्र कवि-सुलभ अतिशयोक्ति मानने का कोई न्याय-संगत कारण नहीं है।[43] कुन्तल नर्मदा के दक्षिण के प्रदेश का नाम था जिस पर राष्ट्रकूटों का शासन था। पम्पा भारत ने भी कुन्तलों और महीपाल के बीच जो युद्ध हुआ उसका वर्णन किया है। प्रतीत होता है कि उसने ठीक इसी समय लगभग मालवा प्रदेश को विजय कर अपने राज्य में मिला लिया।

गोरखपुर जनपद (उत्तरप्रदेश) के कलचुरि प्रत्यक्षतः कन्नौज के प्रतिहारों के माण्डलिक थे। इस वंश का एक युवराज गुणाम्बोधि भोज (934-990 ई.) का प्रिय हो गया और उससे भूमि प्राप्त की।[44] उसने सैनिकों और अस्त्र-शस्त्र से बंगाल को विजय करने में अपने स्वामी की सहायता की[45] उसका उत्तराधिकारी उल्लभ था और उल्लभ का उत्तराधिकारी भामान था। पूर्वोक्त अंतिम राजा प्रत्यक्षतः कन्नौज के राजा महीपाल (914-931 ई.) का समकालीन था जो भोज का पौत्र था। कहला पट्ट से ज्ञात है कि उसने धारा की विजय द्वारा ख्याति पाई।[46] वह कन्नौज के प्रतिहारों के अधीन एक क्षुद्र स्थानीय शासक था, अतः मालवा जैसे दूरस्थ प्रदेश के विरूद्ध अपने ही बल पर कोई सामरिक अभियान करना निश्चय ही उसके लिए असंभव था। सर्व संभाव्यतः वह अपने अधीश्वर महीपाल के दक्षिणी प्रयाण में साथ था और उसके साथ उस विजय में भाग लिया। इससे एक महत्वपूर्ण तथ्य का निर्णय होता है कि इसके पूर्व मालवा कन्नौज के राज्य में सम्मिलित नहीं था। यह असंदिग्ध है कि इस अवधि के लगभग इस पर प्रतिहारों का आधिपत्य था। महीपाल के पुत्र और उत्तराधिकारी महेन्द्रपाल द्वितीय के शासन का तिथ्यांकित 946 ई. का प्रतापगढ़ शिलालेख[47] सूचित करता है कि 946 ई. में माधव महत् मण्लेश्वर एवं उज्जैन का राज्यपाल था और मुख्य सेनापति श्री शर्मन् इस प्रतिहार सम्राट के अधीन मण्डपिका में (वर्तमान मंडू, जो मध्य भारत के धार राज्य में है) राज्य का संचालन कर रहा था। माधव ने मीन-संक्रान्ति के दिन उज्जैन में महाकाल देव की पूजा कर घोण्ट-वर्षिका में इन्द्रादित्य-देव के मंदिर के निर्वाह के लिए धारा-पद्रक ग्राम दान किया। इससे असंदिग्ध रूप से प्रमाणित होता है कि इस अवधि में मालवा पर कन्नौज के प्रतिहारों का पूर्ण नियंत्रण था, किन्तु यह स्थिति बहुत दिन नहीं रही। महीपाल अपने वंश का अंतिम महान् राजा था। उसके पुत्र महेन्द्रपाल द्वितीय के राज्यारोहण के अत्यल्प समय पश्चात् विशाल प्रतिहार साम्राज्य छिन्न-भिन्न होने लगा। यह ध्यान देने की बात है कि भारत के दो महान् चक्रवर्ती वंशों प्रतिहार और राष्ट्रकूट का विखण्डन लगभग एक ही समय दसवीं शती ईसवी के मध्य आरंभ हुआ। इससे अन्य गौण शासक वंशों को इसका अधिकतम लाभ उठाने का स्वर्ण अवसर हाथ लगा। प्रतीत होता है कि बुंदेलखंड का चंदेल राजा यशोवर्मन (925-50 ई.) प्रतिहार साम्राज्य पर धावा बोलने वालों में प्रथम था। उसने इसके दक्षिणी प्रदेशों का अधिकांश भाग इससे छीन लिया। ईसवी 953 के कुछ समय पूर्व चंदेल राज्य का विस्तार[48] उत्तर में यमुना नदी से लेकर दक्षिण में चेदि के सीमान्तों तक और पूर्व या उत्तर-पूर्व में कलिंजर से उत्तर-पश्चिम में गोपाद्रि या वर्तमान ग्वालियर तक था। ऐसी प्रगति अति स्पष्ट रूप से प्रतिहार प्रशासन की संकटपूर्ण स्थिति का उदाहरण प्रस्तुत करती है। वह साम्राज्य जो किसी समय दक्षिण में नर्मदा नदी तक फैला हुआ था अब इतने पीछे ढकेला जा चुका था कि ग्वालियर तक सीमित हो गया था।

उथल-पुथल और अव्यवस्था की इस अवधि में सिंहासन-च्युत परमार वैरिसिंह द्वितीय चुपचाप नहीं बैठा। वह राष्ट्रकूट राज्य में निर्वासनावस्था में रह रहा था। अपनी क्षमता से स्थिति का जितना भी अधिकाधिक लाभ वह उठा सकता था उसने उठाया, और मालवा में परमार-शासन को पुनः जीवित करने में उसने कोई बात उठा न रखी। प्रतीत होता है उसने मान्यखेत के राष्ट्रकूट से सेना प्राप्त की जिसको लेकर वह उपराजा महेन्द्रपाल द्वितीय के ऊपर टूट पड़ा और उसको हटाकर उसने प्रतिहार आधिपत्य का अंतिम चिन्ह मिटा दिया। उदयपुर[49] का ग्यारहवाँ श्लोक इस बात का संकेत करता है। इसमें लिखा है[50] कि 'राजा (वैरिसिंह द्वितीय) ने सूचित किया कि यह विख्यात धारा है, जब उसने असि-धारा से अपने शत्रु-समूह का वध किया' बुहलर ने लिखा है[51] कि इस पद का अर्थ है 'असि-धारा से शत्रु पर प्रहार कर राजा ने सूचित किया कि धारा उसकी है।'

इस प्रकार अनुमानतः चक्रवर्ती राष्ट्रकूटों की सहायता से मालवा में परमार वंश का पुनः स्थापन हुआ। इस समय से आगे इसका दृष्टिकोण पूर्णतया बदल गया और इसके विचार-ढँग का स्वरूप भिन्न हो गया। प्राचीन शासक-वंश राजनीति के मंच से वेग से लोप हो रहे थे और उनका स्थान नवीन वंश ले रहे थे। अतः परमारों ने अपनी शक्ति बढ़ाने के प्रत्येक अवसर का लाभ उठाया।

संदर्भ

1. ट्रान्जिक्शंस ऑफ द रा. ए. सो., वॉल्यूम 1, पृ. 227
2. ए. इं., वॉल्यूम 2, पृ. 232
3. इं. ए., वॉल्यूम 20, पृ. 83-84
4. 'प्रबन्ध चिन्तामणी', पृ. 33
5. ए. इं., वॉल्यूम 19, पृ. 69
6. प्रोसीडिंग्स एन्ड ट्रान्जेक्शंस-ओरिअन्टल कॉन्फ्रेंस, पूना, पृ. 319
   उपर्युक्त, मद्रास, 1924; पृ. 303, पादटिप्पणी, ए. इं., वॉल्यूम 19, पृ. 263
7. नवसाहसांकड़ चरित्र, सर्ग-11, श्लोक 99
8. फ्लीट कृत 'गुप्त इंस्क्रिप्शन', पृ. 230
9. अपरा-पुरी, कुल-राजधानी, नवसा., सर्ग - 1, श्लोक 90-91
10. 'प्रबंध चिंतामणि, पृ. 46
11. ए. इं., वॉल्यूम 8, पृ. 101
12. उपर्युक्त
13. ए. ज्यो. इं., पृ. 562
14. ए. इं., वॉल्यूम 1, पृ. 225
15. सर्ग-1, श्लोक 76
16. उपर्युक्त, श्लोक 76, 78
17. उपर्युक्त, श्लोक 77
18. प्रबंध, पृ. 63

19. उपर्युक्त,
20. इं. ए., वॉल्यूम 6, पृ. 48; उपर्युक्त वॉल्यूम 14, पृ. 160
21. ज. ए. सो. बं. वॉल्यूम 31, पृ. 114, पादटिप्पणी
22. ए. इं., वॉल्यूम 1, पृ. 225; इं. ए., वॉल्यूम 1, पृ. 167
23. ए. इं., वॉल्यूम 1, पृ. 225
24. नवसाहसांक चरित्र' सर्ग-11, श्लोक 80
25. ए. इं., वॉल्यूम 14, पृ. 296
26. उपर्युक्त, वॉल्यूम 1, पृ. 237
27. आ. सा. इं., 1902-03 पृ. 207
28. ए. इं., वॉल्यूम 1, पृ. 237, श्लोक 9
29. उपर्युक्त
30. ए. इं., वॉल्यूम 1, पृ. 237, श्लोक 11
31. ज. डि. ले., वॉल्यूम 10, पृ. 47
32. ए. इं., वॉल्यूम 9, पृ. 1
33. इं. ए., वॉल्यूम 12, पृ. 181
34. ए. इं., वॉल्यूम, 12, पृ. 102
35. उपर्युक्त, वॉल्यूम 7, पृ. 29-30
36. ज. डि. ले., वॉल्यूम 10, पृ. 66
37. ए. इं., वॉल्यूम 7, पृ. 34
38. उपर्युक्त, वॉल्यूम 4, पृ. 288
39. उपर्युक्त, वॉल्यूम 9, पृ. 28
40. ज. डि. ले., वॉल्यूम 10, पृ. 75
41. ज. डि. ले., वॉल्यूम 10, पृ. 63
42. उपर्युक्त, पृ. 64 एवं बा. ग. वॉल्यूम 1, भाग दूसरा, पृ. 380
43. ए. इं., वॉल्यूम 7, पृ. 89, श्लोक 9 एवं सोढ़देव का कहला पट्ट श्लोक 5, 11, 34
44. उपर्युक्त, जा. डि. ले., वॉल्यूम 10, पृ. 52
45. उपर्युक्त, श्लोक 13
46. ए. इं., वॉल्यूम 14, पृ. 176
47. ए. इं., वॉल्यूम 1, पृ. 132, श्लोक 23
48. उपर्युक्त, पृ. 134, श्लोक 45
49. ए. इं., वॉल्यूम 1, पृ. 225
50. पूर्वोक्त
51. उपर्युक्त, पादटिप्पणी 86